Prof Pradeep Mathur

Media Guru, journalist and writer
Email: drpkmathur@gmail.com
Mobile: 9810385757 / 9910069262

Date: 8 October 2025

presently

Editor-in-Chief:
Media Map News

Chairman:
MBKM Foundation,
New Delhi

formerly

Course Director and HOD
Dept. of Journalism
Editor: Communicator
IIMC, New Delhi-67.

Director: School of Mass Communication, Jaipur National University, Jaipur

Academic Advisor:
VBS University, Jaunpur

Editor:
Publication Syndicate,
news features service

Resident Editor:
The Pioneer, Lucknow

Special Correspondent:
National Herald,
New Delhi,

Senior Sub Editor:
The Tribune, Chandigarh.

Dear Ram Kishore Upadhyaya Ji

I hope this finds you in your very best.

Attached please find an abridged manuscript of my forthcoming book.
I need a favour from you.
I want you to write a comment on the book in not more than 150 words and send it to me along with your passport size photo to be published in the book. Any other suggestion to improve the book will be a greater favour. Please WhatsApp/ email it to me at your earliest convenience. I will be grateful for the favour.

With thanks and best wishes

Yours sincerely

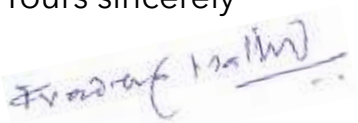

Prof Pradeep Mathur

हास्य व्यंग

तोला

माशा मीशा

In side front cover

तोला, माशा, मीशा

प्रो. प्रदीप माथुर

मीडिया मैप प्रकाशन

New delhi

Title page back (blank)

अभिन्न मित्र और व्यंग सम्राट श्री अनूप श्रीवास्तव जी की सुखद एवं पावन स्मृति को भावभीनी

श्रद्धांजलि के साथ सप्रेम समर्पित

तोला माशा मीशा

व्यंग्य की अनकही यात्रा .....

1. अनेकता में एकता का सूत्रधारक - पकौड़ा .....
2. लड्डू के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्र .....
3. खिचड़ी विरोधी, राष्ट्रद्रोही .....
4. बहुमुखी विकास की प्रतिमूर्ति-बाढ़देवी.....
5. अपना-अपना आरक्षण.....
6. हमारे विकास के मार्ग की बांधा : दुग्धपान .....
7. एक नए प्रतीक की तलाश .....
8. चेतराम हलवाई का कत्तर्व्य बोध .....
9. हरी मिर्च का दर्द.....
10. हमारी पुरातन जीवन शैली का आधार.....
11. नए युग के नए नेता को नमन
12. तलाश एक उद्घाटनकर्ता की .....
13. हमारी मानसिक गुलामी की वजह क्या है?
14. आत्मनिर्भरता और मेरे मित्र सिंह साहब.....
15. कोरोनावाद : एक नयी राजनैतिक विचारधारा का जन्म .....
16. कोरोना सेना सेवा समिति .....
17. और मैं बना कोरोनादेव मंदिर का ट्रस्टी .....
18. कोरोना काल में अच्छे दिनों की दरकार .....

19. **कोरोना वायरस से साक्षात्कार** .....

20. **दिल्ली के यह क्रांतिदूत** .....

****

प्राक्कथन

प्रख्यात शिक्षाविद, मीडिया लेखक एवं सम्वेदनशील कवि
प्रो लल्लन प्रशाद द्वारा लिखित

प्राक्कथन

प्रो लल्लन प्रशाद द्वारा लिखित

मेरी अपनी बात

वर्ष 1966-67 में जब एक प्रशिक्षु पत्रकार के रूप में मैंने अपना करियर शुरू किया, तब पत्रकारिता का पुराना युग था और पत्रकारिता उस युग की परंपराओं, अनुशासन और पेशेवर मर्यादाओं को अपने अंदर समेटे हुए थी। उस युग के संपादक, इन परंपराओं के साक्षात प्रतीक थे।

उनकी प्रतिबद्धता, कार्यशैली, पत्रकारिता कौशल एवं स्वतंत्र एवं निष्पक्ष लेखन मेरे जैसे युवा पत्रकारों के लिए एक प्रेरणा स्त्रो था, बल्कि पत्रकारिता की विधा सीखने के लिए एक प्रशिक्षण केंद्र भी था। मुझे गर्व है कि मैंने उन पत्रकारिता मूल्यों को अपने लंबे और विविध पत्रकार का जीवन में हमेशा बनाए रखा।

उस पुराने युग की पत्रकारिता का एक अलिखित नियम ये भी था कि पत्रकार। अपने बारे में कभी भी कुछ ना कहते थे, ना लिखते थे। आत्मप्रचार औरलोकप्रिय बनने की चाह जो आज के मीडिया संसार में सामान्य बात है तब आकल्पनीय थी। पायनियर लखनऊ और ट्रिब्यूट चंडीगढ़ जैसे पुराने। समाचार पत्रों में कानूनी प्रावधान के अंतर्गत प्रिंटलाइन बॉक्स में एक जगह संपादक का नाम जाने के अतिरिक्त संपादक या किसी पत्रकार का नाम कहीं भी प्रकाशित नहीं होता था। समाचारपत्रों में जहाँ मैंने अपनी पत्रकारिता जीवन की प्रारंभिक और गुजारें, ये पुराने मूल्य और मान्यताये पूरी तरह से प्रचलन में थी। इसका परिणाम यह हुआ कि मुझे सदैव अपने बारे में कुछ कहने, लिखने या कोई इस पुस्तक के संदर्भ सम्मान पाने को लेकर झिझक रही। आजीवन के अंतिम पड़ाव में भी ये झिझक बनी हुई है। फिर भी इस झिझक मुझे छोड़नी पड़ रही है। कारण ये है कि मेरे मित्र, सहयोगी और छात्रों ने सदैव मुझे एक अंग्रेजी भाषाई पत्रकार और अंग्रेजी पत्रकारिता शिक्षक के रूप में जाना है, जिसका हिंदी साहित्य और हिंदी में हास्य व्यंग्य विधा से कोई संबंध नहीं था। इसमें मेरे तमाम हिंदी पत्रकार मित्र, व्यंगकार और हिंदी पत्रकारिता के विद्यार्थी भी हैं। मुझे लगता है कि यह देखकर वे मन ही मन जरूर कहेंगे कि हमारे अंगने में तुम्हारा क्या काम है? कुछ दशकों पूर्व जब अंग्रेजी भाषाई समाचार पत्रों में कार्यरत था। या फिर भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, में अंग्रेजी पत्रकारिता का आचार्य था हिंदी में कभी कभार छपने पर लोग अक्सर कहते थे अच्छा लिखा है। किसने अनुवाद कराया?

इन समस्त मित्रों और हितोषियों को मैं ये बताना चाहता हूँ कि भले ही मेरा व्यावसायिक जीवन अंग्रेजी पत्रकारिता में बीता हो पर हिंदी मेरे लिए कभी पराई भाषा नहीं रही। मेरी माँ हिंदी की शिक्षिका थी और कभी कभी कविताये भी लिखती थी। इसलिए हिंदी भाषा के प्रति लगाव, मुझे विरासत में मिला है। मेरे पास हिंदी या पत्रकारिता की कोई औपचारिक डिग्री नहीं है, लेकिन हिंदी हमेशा से मेरे भीतर का हिस्सा रही। मुझे यह सौभाग्य भी मिला है कि हिंदी साहित्य के महान विद्वान डॉक्टर रामविलास शर्मा का छात्र रहा हूँ। पर विडंबना यह है कि डॉक्टर शर्मा हमें अंग्रेजी करता पढ़ाते थे। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि छोटा सा ही सही, पर हिंदी के आंगन में मेरा भी काम है।

दूसरा प्रश्नचिन्ह यह भी लग सकता है कि मेरे जैसा राजनीति, प्रशासन और अंतरराष्ट्रीय विषयों।पर पत्रकारिता करनेवाला व्यक्ति हल्के फुल्के व्यंग लेखन में क्यों रूचि लेने लगा। इस पर मेरा सीधा सीधा उत्तर है कि गंभीर लेखन में भी जीवन कहाँ से होना चाहिए तभी वह सांस लेता है।

इस पुस्तक का प्रकाशन मेरे परिवारजनों, मित्रों और सहयोगियों के प्रोत्साहन के बिना संभव नहीं था। मेरे दो वरीष्ठ मित्र भारतीय सुचना सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी श्री दिनेश वर्मा और प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रोफेसर लल्लन प्रसाद मेरी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। 80 के दशक के मध्य में पहुंचे हुए ये दो लोग अभी भी युवा लेखकों और पत्रकारों जैसी लेखन ऊर्जा से भरे हुए हैं। उन्होंने लगातार मुझे प्रेरित किया कि मैं केवल मीडिया लेखों तक सीमित ना रहकर पुस्तकों पर ध्यान दूँ। पिछले वर्षों में इन दोनों मित्रों ने कई उत्कृष्ट पुस्तके लिख कर मेरे सामने उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। सिडनी (ऑस्ट्रेलिआ) में बसी मेरी पुत्री आकांक्षा फ़ोन द्वारा और मेरे साथ में रह रहे मेरे दो पुत्र डॉ अनुभव और अंशुमन बराबर मुझसे सब काम छोड़कर पुस्तक लेखन पर ध्यान देने का आग्रह करते रहे है। मेरी पत्नी डॉक्टर रमा, जो स्वम् एक शिक्षाविद और स्वतंत्र मीडिया लेखिका थी, मेरे हर विचार और काम में मेरी सच्ची सहभागी रही।वे कभी मुझे अपनी अधूरी पांडुलिपियों को पूरा कर पुस्तक लेखन के लिये प्रोत्साहित करती रहीं। पिछले वर्ष की शुरुआत वे उनके निधन से पहले तक वे मेरी सबसे कड़ी आलोचक और सबसे कोमल शक्ति थी।मुझे पूरा विश्वास है कि जहाँ कहीं भी वे होंगी, इस पुस्तक के प्रकाशन से उन्हें अवश्य प्रसन्नता मिलेंगी।

मेरे कुछ निकटतम पत्रकार मित्र विशेषतः गोपाल मिश्रा, के बी माथुर, शिवाजी सरकार, डॉक्टर सतीश मिश्रा और श्री अमिताभ श्रीवास्तव भी मेरा उत्साहवधर्न करते रहे है । स्वयंसेवी माध्यम समाचार समूह मीडिया मैप न्यूज़ नेटवर्क में मेरे सहयोगी अनुजतुल्य एडवोकेट चंद्र कुमार एवं जगदीश गौतम, प्रशांत गौतम, प्रमोद कुमार सिंह तथा अंकुर कुमार ने इस कार्य में विशेष सहयोग दिया है। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। **(प्रो प्रदीप माथुर)**

****

पत्रकारिता से व्यंग्य की अंजानी यात्रा

पत्रकार और व्यंगकार दोनों का सरोकार समाज की विसंगतियो से होता है। लीक से हटकर होने वाली बात समाचार का आधार बनती है, उसी से व्यंग्यात्मक उपवास भी जन्म लेता है और व्यंग्यकार को कुछ कहने लिखने का मौका मिलता है। मुझे लगता है कि अगर गंभीरता और सत्ता के निकट होने के। अहम को छोड़ दिया जाए तो हर पत्रकार में व्यहंकार बनने की क्षमता छिपी होती है। पर अधिकांश पत्रकार इस क्षमता का उपयोग समाज के बड़े छोटे लोगों का उपहास उड़ाने और उन्हें नीचा दिखाने में करके अहम की संतुष्टि करते हैं। अंग्रेजी भाषा के पत्रकारों में अहंकारो को ये प्रवृत्ति अधिक ही देखने को मिलती है।

कुछ पारिवारिक संस्कारों और कुछ मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण मैं पत्रकारों, विशेषता अंग्रेजी भाषाओं पत्रकारों की इस अहम और आत्म गौरववादी मनोवृति का कभी भी शिकार नहीं रहा। इसलिए सामाजिक विसंगतियो पर और लीक से हट के होने वाली बातों के भीतर छुपे हुए व्यंग बोध में लेखन की दिशा दे पाया।

अपनी व्यंग्य यात्रा की बात कही जाए तो ये बहुत छोटी, अनिश्चित और ठहरी हुई रही है। पर यात्रा लंबी हो या छोटी मामूली यात्रा भी यात्रा होती है और और हर यात्रा अपना महत्त्व रखती है। मेरी व्यंग्य यात्रा भी ऐसी ही यात्रा है।

वर्ष 1967 से 70 तक मैंने लखनऊ में अपनी पत्रकारिता के प्रारंभिक दिन बिताए। अनूप श्रीवास्तव जी शायद उस समय लखनऊ में या तो थे नहीं और अगर थे भी तो मेरा उनसे तब कोई परिचय नहीं था।फिर वर्ष 1970 से 80 में मैं चंडीगढ़ के अंग्रेजी दैनिक ट्रिब्यून में कार्यरत रहा।

विवाह, घर-गृहस्थी की समस्याऐ और पंजाब के समाज और उनकी राजनीति को समझने को व्यवस्तता के कारण लखनऊ से नाता टूट सा गया। वर्ष 1980 में मैं दिल्ली आया तब लखनऊ के मित्रों से पुराना उन्हें संपर्क साधना शुरू किया। अनूप जी 1980 के दशक में मेरे मित्र बने।

श्रमिक आंदोलन और मार्क्सवादी दर्शन की वैचारिक पृष्ठभूमि से आने के कारण मैं एक गंभीर पत्रकार था और राजनैतिक और अंतर्राष्ट्रीय विषयों में मेरी रूचि थी। मैं उन विषों पर होने वाली संगोष्ठियों में भाग लेता था। दूसरी ओर थे अनूप जी जो अपने व्यंग्य कॉलम काँव काँव की वजह से बहुत लोकप्रिय हो गए थे। हमारे स्वभाव और रूचिया दो विपरीत ध्रुवों जैसी थीं। पर जब मित्रता हुई तो इतनी गाढ़ी हुई कि क्या कहना। हम दोनों और हमारे परिवार एक दूसरे के बहुत नजदीक आ गए। अपनी मृत्यु से एक दिन पहले तक अनूप जी रोज़ सुबह या तो फ़ोन करते थे या उनका संदेश आ जाता था।

हम दो विपरीत स्वभाव वालों को जोड़ने और पास लाने वाले रहे हैं गोपाल मिश्रा। वर्ष 1967 में हम लोगों ने लखनऊ में अपने पत्रकारिता जीवन की शुरुआत साथ ही साथ की थी। गोपाल सकारात्मक सोच वाले अत्यंत संवेदनशील व्यक्ति हैं पर बहुत अधिक बोलने की उनकी आदत के कारण कई लोग उन्हें ठीक से समझ नहीं पाते हैं। खैर जो भी हो, हम दोनों हमेशा अच्छे और सच्चे मित्र रहे हैं। आपसी वाद विवाद होता रहता है, पर गाड़ी मित्रता बराबर बनी रही है। अनूप जी के जाने के बाद हम दोनों को उनकी कमी बहुत खलती है।

जब वर्ष 1984 में दिल्ली से पायनियर का कार्यकारी संपादक बनकर 14 साल बाद मैं उत्तर प्रदेश लौटा तो अनूप जी की व्यंग्य यात्रा काफी जोरों पर थी। अट्टाहस तथा व्यंग की विधा को तमाम लोगों तक पहुंचाने और अपनी संस्था माध्यम द्वारा हिंदी के अच्छे व्यंगकारों को पुरस्कृत किए जाने के कारण उनकी ख्याति चारों ओर फैल रही थी। उन्होंने मुझे भी

अपने साथ जोड़ा और शायद एक-दो वर्ष तक मैं उनकी माध्यम संस्था का उपाध्यक्ष भी रहा। इस कारण मुझे अनूप जी द्वारा आयोजित कुछ कवि गोष्ठियां तथा पुरस्कार समारोह में मंच पर बैठने का भी अवसर मिला और हिंदी के कई अच्छे व्यंगकारों से परिचय हुआ जो आज भी बना हुआ है।

पर आग सच्ची बात कहूँ तो ये भी है कि व्यंग्य विधा के इतने करीब आने के बाद भी हिंदी व्यंग्य और अधिकांश व्यंग्यकारों ने मुझे कभी भी प्रभावित नहीं किया। मेरे हिसाब से व्यंग समाज को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर अपनी बात को मौलिक ढंग से कहने की कला होनी चाहिए। परंतु अधिकांश व्यनकार पत्नी या नताओ पर घिसी पिटी बातें करके स्वयं को बड़ा व्यंगकार समझते रहे हैं। मैंने इस लीक से अलग हटकर कुछ आम जीवन की छोटी मोती चीज़े और आम लोगो की मनोवृति और अदकचरे विचारो पर व्यंग लिखने का प्रयास किया है।

बात मैं अपनी व्यंग यात्रा की कर रहा था। इसे रेखांकित करने में सबसे बड़ी समस्या ये रही है कि मैंने कभी भी अपने प्रकाशित लेखों को संचित करके नहीं रखा। इस कारण इधर उधर बिखरी कुछ कतरनों को छोड़ दिया जाए तो पत्रकारिता जीवन के पहले दो दर्शकों का मेरे पास कोई रिकॉर्ड नहीं है। सही बात तो यह है कि अपने प्रकाशित लेखों का संग्रह कितना महत्वपूर्ण है यह मैंने पूरी तरह तब समझा जब मैं भारतीय जन संचार संस्थान नई दिल्ली, में संकाय, सदस्य बना। तब मेरी समझ में आया किसी पत्रकार के लेखों का संग्रह पत्रकारिता शिक्षा और पत्रकारिता साहित्य के लिए कितना मूल्यवान है।

इस पुस्तक के लिए जब मैंने अपने लेखों का संग्रह किया तो मुझे सबसे पहला लेख वर्ष 1982-83 का मिला जो मैंने दिल्ली की रेड लाइन बसों पर लिखा था। जो अपनी तेज़ रफ़्तार और अनुभवहीन ड्राइवर के आगे सड़क चलते लोगो को कुचल रही थी पर फिर बीच-बीच में लिखे एक-दो और लेख मिल गए। पर व्यंग्य लेखन के बारे में कुछ गंभीरता लेखन कोविड काल में हुआ। घर पर खाली पड़े पड़े मैंने एक व्यंग्य लिखा और अनूप जी को भेजा। उन्होंने कहा कि बहुत अच्छा लिखा है और उसे अपनी हास्य पत्रिका अट्ठास के अलावा कुछ अन्य समाचारपत्रों में भी छपवा दिया। अनूप जी ने मुझसे कहा कि और लिखिए, जब 20 या 25 हो जाएंगे तब किताब छप सकती है। मुझे दुख है कि ये पुस्तक उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हो सकी।

खैर, कोविद के अवकाश में मैंने कुछ और व्यंग्य लिखे और मित्रों और परिजनों को भेजा। मेरे करीबी मित्रों और संबंधियों को तो विश्वास ही नहीं हुआ कि मैं व्यंग्य भी लिख सकता हूँ। जब व्यंग्य लेखों की संख्या बढ़ी। तो लगा कि उन्हें पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना संभव है। वास्तव में आज जब ये पुस्तक एक विचार की जगह मूर्त रूप ले रही है मैं वास्तव में बहुत प्रसन्न हूँ।

****